Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 3, May-2018, ISSN 2230-7540

शिवदान सिंह चौहान और पाश्चात्य साहित्यालोचन

Rajesh Kumar*

Research Scholar PhD (Hindi) South India Hindi Campaign, Madras

----------X----------

पाश्चात्य काव्यशास्त्र से तात्पर्य है– यूरोपीय देश का काव्यशास्त्र। यूरोपीय देश के साथ–साथ अमेरिका और आस्ट्रेलिया का भी गणना पाश्चात्य देशों में की जाती है। शिवदान सिंह चौहान ने पाश्चात्य काव्यशास्त्र को सन् 2001 ई. से लगभग ढाई हजार पुरानी मानते हैं। उन्होंने स्पष्ट लिखा है– ''पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा भी लगभग ढाई हजार पुरानी है। आरंभ में उसका विकास यूनान में हुआ, फिर रोम में। प्लेटो, अरस्तु, लौंजाइनस, होरेस, क्विंटीलियन इस प्राचीन परम्परा के निर्माता हैं।''[1] पाश्चात्य देशों में प्राचीनतम सभ्यता यूनान की मानी जाती है, इसके बाद रोम की। यूनान और रोम के पश्चात् इंग्लैंड या अन्य देशों में साहित्य, कला और संस्कृति चिंतन का विकास होता है। अतः यूनान की सभ्यता पाश्चात्य देशों के अन्य देशों से प्राचीनतम् है। इस बात को स्पष्ट करते हुए प्रो. हरिमोहन ने लिखा है– ''पाश्चात्य काव्य और काव्यशास्त्र की परम्परा भी सबसे पहले यूनान फिर रोम (लैटिन) और इसके बाद इंग्लैण्ड में मिलती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि पाश्चात्य काव्य शास्त्र का उद्भव यूनान में हुआ।''[2] इस तरह शिवदान सिंह चौहान ने इसे और स्पष्ट करते हुए लिखा है– ''फ्रांस, इंगलैण्ड, जर्मनी, इटली, रूस और अमरीका में साहित्य और कला के असंख्य आलोचक, यूनान के मनीषी आचार्यों से दृष्टि लेकर, अपने मौलिक चिंतन द्वारा साहित्य और कला का गंभीर तात्विक विवेचन ही नहीं करते आए हैं, बल्कि विश्व–साहित्य की महान कृतियों और युग–विधायती प्रवृत्तियों का भी मूल्यांकन और विवेचन करते आए हैं।''[3]

पाश्चात्य देशों में कला संबंधी चिंतन अत्यंत प्राचीन एवं व्यापक है, जो यूनान से होते हुए ग्रीक तथा अमरीका तक फैला हुआ है। पाश्चात्य साहित्य और कला चिंतन के साथ–साथ आलोचना का भी विकास हुआ। आलोचकों पर अनेक शास्त्र, वाद एवं विज्ञान का प्रभाव प्रड़ा। इन प्रभाव से प्राप्त ज्ञान के तहत आलोचक लेखक की रचना प्रक्रिया तथा पाठक की सौन्दर्यानुभूति पर गंभीर विचार–विमर्श करने लगे। शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है– ''मनुष्य के बाह्य सामाजिक और आभ्यंतरिक जीवन का अध्ययन करने वाले जितने भी शास्त्र और विज्ञान हैं– समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र और जीवशास्त्र– उनके प्रमुख विद्वानों ने भी अपने–अपने क्षेत्र के अनुसंधानों से प्राप्त तथ्यों की रोशनी में लेखक और कलाकार के मन में होने वाली रचनात्मक प्रक्रिया से लेकर दर्शक–श्रोता–पाठक के मन में होने वाली सौन्दर्यानुभूति की प्रक्रिया और आदिम युग के मानव की सरल, अबोध कलात्मक चेष्टाओं से लेकर आधुनिक युग के संलिष्ट कला–रूपों के विकास का सांस्कृतिक–सामाजिक इतिहास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखकर गंभीर अध्ययन किया है और इस प्रकार पाश्चात्य आलोचना को विभिनन विज्ञानों से भी अनेक नई दृष्टियाँ प्राप्त हुई हैं।''[4]

शिवदान सिंह चौहान ने पाश्चात्य साहित्यलोचना के जन्म से लेकर प्रगतिवादी आलोचना तक के प्रमुख साहित्यकारों एवं आलोचकों को संक्षेप में विवेचन–विश्लेषण किया है। उन्होंने इन साहित्यकारों एवं आलोचकों को सुविधा के लिए कई भागों में बाँट कर देखने का प्रयास किया है– (क) यूनानी काव्य–चिंतक, (ख) लातीनी आलंकारिक, (ग) पाश्चात्य आलोचकों में आधुनिक युग का सूत्रपात, (घ) स्वच्छंदतावादी आलोचक, (ङ) यथार्थवादी आलोचक, (च) कला, कला के लिए : रूपवादी सिद्धान्त (छ) प्रगतिवाद : समाजवादी यथार्थवाद। कुल मिलाकर हम इसे प्रमुखतः दो भागों में बांटा गया है–प्राचीन काव्य–चिंतक, आधुनिक काव्य–चिंतक।

शिवदान सिंह चौहान की दृष्टि में भारतीय और पाश्चात्य आलोचना का अंतस्संबंध :

शिवदान सिंह चौहान ने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का स्वतंत्र अध्ययन किया है। उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन तो नहीं किया, परन्तु उनकी स्वतंत्र विवेचना के आधार पर भारतीय और पाश्चात्य आलोचना का अंतसंबंध को देखा जा सकता है। उन्होंने कई स्तरों पर भारतीय और पाश्चात्य आलोचना का स्तरीय विवेचन किया है।

सन् 1960 ई. के अक्तूबर में, मास्को में 'प्रच्यवेत्ताओं की पच्चीसवीं अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस' अधिवेशन में भारतीय प्रतिनिधि के हैसियत से शिवदान सिंह चौहान ने वहाँ भारतीय काव्यशास्त्र पर अंग्रेजी में एक लेख प्रस्तुत किया जिसका हिन्दी रूपांतरण है– ''भारतीय काव्यशास्त्र उद्भव, विकास और आधुनिक प्रासंगीकता''। इसमें भारतीय काव्यशास्त्रों एवं काव्य सिद्धान्तों पर विचार किया गया है। उन्होंने लेख के आरंभ में लिखा है– ''सच तो यह है कि मुझे अंग्रेजी भाषा में इतने व्यापक विषय की मामूली रूपरेखा तक प्रस्तुत करना असंभव सा लगता है। फिर भी मैं ऐसा करने का साहस कर रहा हूँ ताकि यहाँ उपस्थित पाश्चात्य देशों के प्रमुख, भारत–विद्या–विशारद और साहित्यालोचकों को यह संक्षिप्त परिचय भारतीय काव्यशास्त्र का गंभीर अध्ययन करने और उसे विश्व–संस्कृति की मुख्य धारा में आत्मसात् करने की प्रेरणा मिल सके। इससे विश्व–संस्कृति समृद्ध होगी, ऐसी आशा है।''[5] अतः भारतीय काव्यशास्त्र के महत्त्व एवं स्वरूप को विश्व साहित्य के समक्ष प्रस्तुत करने का एक महत्त्वपूर्ण अवसर था, जहाँ चौहान जी ने बड़ी ही शालीनता के साथ प्रस्तुत किया।

शिवदान सिंह चौहान ने 'आलोचना के सिद्धान्त' में भारती काव्यशास्त्र को विश्व के किसी भाषा से प्राचीन एवं दीर्घ माना है। उन्होंने इस बात को लिखा है– ''प्राचीन भारतीय आलोचना किसी एक ही युग की देन नहीं है, बल्कि अनेक युगों में व्याप्त

www.ignited.in

उसके विकासक्रम की धारा ने लगभग दो हजार साल का विस्तार घेरा है। सूत्रकालीन भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' से लेकर सत्रहवीं शताब्दी में मुगल सम्राट शाहजहाँ के दरबारी पंडितराज जगन्नाथ के 'रसगंगाधर' की रचना के बीच की दीर्घ अवधि में सैंकड़ों विद्वानों और आचार्यों ने उसका विकास किया है। साहित्यशास्त्र को इतनी दीर्घ और सुविशाल परम्परा विश्व की किसी भी प्राचीन भाषा–अरबी, चीनी, यूनानी, लातीनी में नहीं मिलती।''[6] काव्यशास्त्र ही नहीं सभ्यता और संस्कृति का विकास पहले पहल यहाँ ही हुआ।

शिवदान सिंह चौहान का मानना है कि विश्व आलोचना साहित्य में हिन्दी आलोचना का जिक्र नहीं आता। भारतीय साहित्यकार एवं विद्वानों ने पाश्चात्य साहित्यालोचना की ओर जितना रुझान रखते हैं, शायद ही पाश्चात्य विद्वान भारतीय साहित्यकारों का उल्लेख करते हैं। चौहान जी इस खेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है– ''अभी तक प्राचीन भारत के मनीषी विद्वानों, दार्शनिकों और काव्यशास्त्रियों द्वारा साहित्यिक मूल्याकन के जो प्रतिमान और सौन्दर्यबोध संबंधी अवधारणाएँ प्रस्तुत की गई हैं, पाश्चात्य विद्वानों अैर आलोचकों ने उनका अभी तक आत्मसात्करण नहीं किया है। शायद पूर्वात्य देाों की किसी भी भाषा के प्राचीन काव्यशास्त्र का उन्होंने आत्मसत्करण नहीं किया। मैं ऐसे किसी पाश्चात्य को नहीं जाना जिसने साहित्य की आलोचना के विकास का इतिहास लिखतेसमय क्लासिकल भारतीय काव्यशास्त्र के महान् सिद्धान्तों का उल्लेख किया हो, हालांकि वे उसे वर्ल्ड लिटरेरी क्रिटिसिज्म के नाम पर पेश करता है।''[7]

यहाँ चौहानजी ने पाश्चात्य आलोचकों की ओर संकेत किया है, जो भारतीय साहित्य तथा साहित्यकार को अपने साहित्य में उल्लेख नहीं करते। भारतीय साहित्यकार की जीवन दृष्टि मूलतः आदर्शवादी है और पाश्चात्य साहित्यकारों की दृष्टि मूलतः यथार्थवादी। पाश्चात्य साहित्यकार जहाँ सौन्दर्यनुभूति की बात करते हैं, वहीं भारतीय साहित्यकार मानव–मूल्यों का उद्घाटन करते हैं। चौहान जी का मानना है कि यह फर्क देश–काल एवं वातावरण के चलते हैं। स्वयं भारतीय लेखक पाश्चात्य लेखकों से इस विषय पर दूरी बनाए रखते हैं। शिवदान सिंह चौहान कहते हैं कि कुछ साल पहले मैंने एक अंग्रेजी अखबार में एक दिलचस्प लेख पढ़ा था, जिसमें यह तर्कपूर्ण लिखा गया था कि पूर्वी देशों की अलंकृत शैला, पुराणपंथी बिंबविधान और सौन्दर्य–दृष्टि भिन्न होने के कारण पाश्चात्य देशों की सुसभ्य और सुसंस्कृत मानसिकता किसी प्रकार उसे पसंद नहीं कर पाती। इस लेख को पढ़ने के उपरांत चौहानी जी को आश्चर्य हुआ और उन्होंने बहुत ही संतुलित टिप्पण प्रस्तुत किया– ''दोनों की सौन्दर्य–दृष्टि में कुछ फर्क है, विशेषकर इसलिए की पश्चिम और पूर्व की ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि और राष्ट्रीय विशेषताएँ भिन्न रही हैं, लेकिन यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि ऐसी भिन्नताएँ पाश्चात्य देशों के अंदर नहीं रही या किसी पाश्चात्य जगत् के विभिन्न देश अपनी राष्ट्रीय विशेशताओं से रहित हैं।''[8] कहने का तात्पर्य यह है कि विश्व के हर देश ने अपनी विशिष्ट विशेषताओं के आधार पर अपनी अलग–पहचान बना रखी है। यह भिन्नता ही देश की पहचान है। हर देश की संस्कृति और सभ्यता अलग–अलग होती है। यही कारण है कि भाव, विचार, अनुभूति और अभिव्यक्ति में भिन्नता देखी जाती है।

'अर्थ–विचार' आनंदवर्धन की महत्त्वपूर्ण देन है। शिवदान सिंह चौहान ने भी इस पर विचार–विमर्श किया है। आनंदवर्धन ने जिस 'अर्थ–विचार' की शुरुआत की थी, उसी विचार को बीसवीं शताब्दी के पाश्चात्य आलोचक आई.ए. रिचाडर्स ने अपने 'थियरी ऑपफ मीनिंग' में विवेचन किया है। चौहान जी इस बात का उल्लेख करते हुए लिखते हैं– ''भारतीय काव्यशास्त्र को आनंदवर्धन की सबसे बड़ी देन उनका 'अर्थ–विचार' संबंधी वैज्ञानिक विवेचन है। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि जिस 'थियरी ऑफ मीनिंग' का विकास पश्चिम के आलोचकों ने बीसवीं शताब्दी में आकर किया है, उसका आनंदवर्धन ने लगभग ग्यारह सौ साल पहले ही विकास कर दिया था और वह तब से भारतीय काव्यालोचना का मूलाधार बना हुआ है; इसलिए 'थियरी ऑफ मीनिंग' का वास्तव में श्रेय आनंदवर्धन को है, आई.ए. रिचाडर्स को नहीं।''[9]

आई.ए. रिचाड्र्स ने अर्थ और भाव के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करते हुए अर्थ के दो रूप स्वीकार किया है– पहला सांकेतिक अर्थ, दूसरा भावात्मक अर्थ। आनंदवर्धन ने भी इस बात पर बहुत पहले विचार किया था। शिवदान सिंह चौहान का स्पष्ट मानना है– ''आधुनिक 'थियरी ऑफ मीनिंग' में भी अर्थ के दो भेद किए गये हैं, जो ध्वनिकार के विवेचन से मिलते हैं। आई.ए. रिचाड्र्स ने भाषा के वैज्ञानिक और भावात्मक दो तरह के प्रयोगों के अनुरूप अर्थ के भी दो भेद किए हैं– सांकेतिक अर्थ और भावात्मक अर्थ। ध्वनिकार ने भी वाच्यार्थ की 'साक्षात् संकेतित अर्थ' कहा था।''[10]

इस तरह हम कह सकते हैं कि आई.ए. रिचाड्र्स पर ध्वनिकार आनंदवर्धन का प्रभाव है।

हिन्दी में क्रोचे के अभिव्यंजनावाद को लेकर अनेक आलोचकों ने अपने मत प्रस्तुत किए हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कविता को अभिव्यंजना माना है। उन्होंने काव्य में लोकमंगल और माधुर्य नामक लेख में स्पष्ट लिखा है– ''कविता अभिव्यंजना है। वह अभिव्यक्ति या विकास को लेकर चलती है।''[11] शिवदान सिंह चौहान का मानना है कि अभिनवगप्त ने भी अभिव्यक्तिवाद में अभिव्यंजना पर गौड़ रूप में सही विचार किया है। उनका मानना है कि अपने हृदय में वासना रूप अवस्थित स्थायी भाव की ही सहृदय फिर से रस रूप में प्रतीति करता है। विभाव आदि तो केवल अभिव्यंजना साधन मात्र है।

विज्ञान और तकनीकी ने मनुष्य को आरंभ से ही प्रभावित किया है। विज्ञान मनुष्य का विकसित बुद्धि का परिणाम है। विज्ञान के चलते विश्व सिमट गया है। देशों में विभेद होने के बावजूद भी राष्ट्रीय संस्कृतियाँ आज अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति बनती जा रही है। चौहान जी का मानना है कि– ''समय निकट है जब उस व्यापक समन्वयकारी अनुष्ठान में पौर्वात्य और पाश्चात्य के युगचेता विद्वानों का समान योगदान रहेगा और प्राचीन भारत, चीन, मिस्र, यूनान और आधुनिक जगत की समस्त उपलब्धियों का एक व्यापक साहित्य–सिद्धान्त के रूप में समन्वय किया जाएगा। तब भरतमुनि, आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त ओर कुंतक के साथ प्लेटो, अरस्तु, लौंजाइनस, गेटे, लेसिंग, आर्नलड, रस्किन, बेलिंस्की, चर्निशेव्स्की, टॉलस्टॉय, कॉडबेल आदि हम सब की सामान्य, जीवंत विरासत के अंग होंगे।''[12] इस प्रकार चौहानजी विश्व को एक रूप में देखना चाहते हैं।

निष्कर्ष :

शिवदान सिंह चौहान ने आलोचना को मूलतः दार्शनिक प्रक्रिया माना है और इन्होंने यह भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य सिद्धान्तों की परम्परा से पुष्ट किया है। उनका मानना है कि महत्त्वपूर्ण

www.ignited.in

साहित्य विचारक कोरे पाठ का विश्लेषण तक सीमित नहीं रहते हैं, वे विश्व–दृष्टि विशेष के आधार पर सिद्धान्त कथन और मूल्यांकन करते आये हैं। पूर्व या पाश्चात्य के विद्वान विश्व–दृष्टि के साहित्य विवेक में नैतिक मूल्यों का अनुसंधान, जीवनानुभूति और मानव–मूलय का ही उद्‌घाटन करते हैं।

संदर्भ सूची :

शिवदान सिंह चौहान (2001). आलोचना के सिद्धान्त, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली–110085, संस्करण, पृ. 83

प्रो. हरिमोहन (2008). भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की पहचान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण, पृ. 93

शिवदान सिंह चौहान (2001). आलोचना के सिद्धान्त, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली–110085, संस्करण, पृ. 83

शिवदान सिंह चौहान, आलोचना के सिद्धान्त, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली–110085, संस्करण, पृ. 84

शिवदान सिंह चौहान, परिप्रेक्ष्य को सही करते हुए, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–1999, पृ. 110

शिवदान सिंह चौहान (2001). आलोचना के सिद्धान्त, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली–110085, संस्करण–2001, पृ. 33

शिवदान सिंह चौहान (1999). परिप्रेक्ष्य को सही करते हुए, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण, पृ. 111

शिवदान सिंह चौहान (1999). परिप्रेक्ष्य को सही करते हुए, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण, पृ. 111

शिवदान सिंह चौहान (2001). आलोचना के सिद्धान्त, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली–110085, संस्करण, पृ. 55

शिवदान सिंह चौहान (2001). आलोचना के सिद्धान्त, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली–110085, संस्करण,
पृ. 55

सं. सुधाकर पांडेय (2000). आचार्य शुक्ल : प्रतिनिधि निबंध, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, आवृत्ति, पृ. 114

शिवदान सिंह चौहान (2001). आलोचना के सिद्धान्त, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली–110085, संस्करण, पृ. 85

Corresponding Author

Rajesh Kumar*

Research Scholar PhD (Hindi) South India Hindi Campaign, Madras